हिंदी वर्चस्व बनाम मैथिली अस्मिता

मिथिलेश कुमार झा

आधुनिकता के साथ दुनिया के हर समाज में कुछ बुनियादी परिवर्तन आये हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है राष्ट्र-राज्य का एक विचार के रूप में उदय, उसकी रचना और उसके साथ एक राष्ट्र-भाषा का विकास। हालाँकि उत्तर-आधुनिकता के इस युग में इस तरह के निर्माण और बनावट की व्यापक आलोचना की जा रही है। इसकी उपयोगिता को लेकर भी कई तरह के सवाल उठाये जा रहे हैं, और एक वैकल्पिक समाज के निर्माण की बात भी की जा रही है। लेकिन राष्ट्र-राज्य का विचार अब भी प्रासंगिक बना हुआ है, और आज भी दुनिया के बहुत से समुदायों को आकर्षित करता है। वर्तमान में दुनिया के बहुत सारे समुदाय अपने स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं।[1]

भाषा का प्रश्न राष्ट्र के प्रश्न के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। कल्पना पर आधारित एक राजनीतिक समुदाय[2] के रूप में राष्ट्र की कल्पना एक ऐसी भाषा के बिना सम्भव नहीं मानी जाती

[1] दुनिया के कई राष्ट्रों में विशेषकर दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में अब भी कई समुदाय राष्ट्र-राज्य के रूप में अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं. निवेदिता मेनन और आदित्य निगम (2007), *पावर ऐंड कंटेस्टेशन : इंडिया सिंस 1989*, ज़ेड बुक्स, लंदन; अदील खान (2005), *पॉलिटिक्स ऑफ़ आइडेंटिटी : एथ्निक नेशनलिज़म इन पाकिस्तान*, सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

[2] बेनेडिक्ट ऐण्डरसन (1983). *इमैजिन्ड कम्युनिटीज़ : रिफ्लेक्शंस ऑन दि ओरिजिन ऐंड स्प्रेड ऑफ़ नेशनलिज़म*, वर्सो, लंदन.

जिसे उस राज्य में रहने वाले लोग समझ सकें और बोल सकें। लेकिन, यह भी एक हक़ीक़त है कि हर समाज में इस तरह की भाषा के निर्माण का प्रयास अंतर्विरोधों से भरा हुआ रहा है। चाहे इंग्लैंड में अंग्रेज़ी का प्रश्न हो, फ्रांस में फ्रेंच का या फिर स्पेन में स्पैनिश का प्रश्न हो।[3] युरोप में भी इस तरह के प्रयास की शुरुआत 19वीं शताब्दी में ही होती है। इसीलिए सीटन वॉट्सन मानते हैं कि युरोप तथा इसके नज़दीकी दायरे के क्षेत्रों में उन्नीसवीं शताब्दी देशीय भाषाओं के कोश रचयिताओं, वैयाकरणों, भाषा-विशेषज्ञों तथा लेखकों व कवियों के लिए स्वर्णिम युग था।[4]

औपनिवेशिक शासन के तहत भारत के लिए राष्ट्र-राज्य के निर्माण का प्रयास तथा उसके साथ एक राष्ट्रीय भाषा की रचना का प्रयास कई तरह की चुनौतियों और अंतर्विरोधों से भरा हुआ साबित हुआ है।[5] भारत एक बहुभाषी देश है।[6] यहाँ के कई भाषायी समुदायों की अपनी अलग विशिष्टता, कला, संस्कृति तथा इतिहास है। इन समुदायों का संबंध राष्ट्रीय भाषा समझी जाने वाली हिंदी से हमेशा सहज नहीं रहा है, ख़ासकर भारत के उस भाग में जिसे हिंदी प्रदेश के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत आलेख मैथिली के संदर्भ में, राष्ट्रीय भाषा हिंदी का वर्चस्व तथा मैथिली-अस्मिता को समझने का एक प्रयास है। मैं इसमें यह देखने की कोशिश करूँगा कि हिंदी भाषा के एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में उदय तथा प्रसार एवं इसके प्रभावों को एक अन्य भाषा, मैथिली, जिसे वर्षों तक बोली कहा जाता रहा, के संदर्भ में कैसे समझा जा सकता है? मैथिली ने कहाँ तक, क्यों और किन परिस्थितियों में इसका समर्थन या विरोध किया? किन कारणों से हिंदी का विरोध हुआ, विशेषकर हिंदी प्रदेश के भीतर भी? साथ ही मैं इस प्रश्न पर भी विचार करूँगा कि क्या भाषा किसी समाज या राष्ट्र के विकास का अध्ययन करने का एक उचित माध्यम हो सकती है?

हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में अभ्युदय एवं प्रसार

राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में लगभग सभी राष्ट्रीय नेताओं ने एक राष्ट्रीय/देशी भाषा, जो कि अंग्रेज़ी से भिन्न हो, की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। वास्तव में किसी भी राष्ट्र का निर्माण व विकास तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि उसमें रहने वाले सभी लोग एक दूसरे से ख़ुद को जुड़ा हुआ अनुभव न करें। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जो इस तरह के जुड़ाव के अनुभव को लोगों के बीच विकसित कर सके। भारत जैसे बहुभाषी देश में पहले हिंदुस्तानी और तत्पश्चात हिंदी को इस तरह की भूमिका अदा करने योग्य भाषा समझा गया। यह सर्वविदित है कि किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा की तुलना में हिंदुस्तानी/हिंदी का प्रभाव अपने क्षेत्र में तथा उसके बाहर भी अधिक रहा है। यह

---

[3] वही : 44-45.

[4] सेटन वॉट्सन (1977), *नेशंस ऐंड स्टेट्स,* मेथुन ऐंड को. लिमिटेड, लंदन, बेनेडिक्ट ऐण्डरसन (1986) के पृष्ठ 71 पर उद्धृत.

[5] आलोक राय (2001), *हिंदी नैशनलिज़्म,* ओरियंट लांगमैन, नयी दिल्ली,; वसुधा डालमिया (1997), *नैशनलाइज़ेशन ऑफ़ हिंदी ट्रैडिशंस : भारतेंदु हरिश्चंद्र ऐंड नाइनटिंथ सेंचुरी बनारस,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली; फ्रेंचेस्का ओरसीनी (2002), *द हिंदी पब्लिक स्फियर* (1920-1940) : *लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर इन द ऐज़ ऑफ़ नैशनलिज़्म,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली; पार्थ चटर्जी (1993), *नेशंस ऐंड इट्स फ्रैग्मेंट्स : कोलोनियल ऐंड पोस्ट-कोलोनियल हिस्ट्रीज़,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन; सुदीप्त कविराज (1996), 'क्रिटिक ऑफ़ पैसिव रेवोल्यूशन' *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 23, अंक 45-47.

[6] भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22, साहित्य अकादेमी की सूची में 25 तथा भारतीय जनगणना, 2001 के अनुसार भारत में कुल 122 भाषाएँ (22 शेड्यूल्ड 100 नॉन शेड्यूल्ड) हैं. इसके अलावा जनगणना में लगभग 250 अन्य बोलियों का ज़िक्र है. बोली और भाषा का विभाजन व वर्गीकरण एक कृत्रिम प्रक्रिया है जो हमेशा मान्य नहीं रही है। भाषा और बोली का संबंध राष्ट्र और राष्ट्रीयता के संदर्भ में भी देखा जा सकता है. जिस तरह से किसी भी राष्ट्रीयता में प्राय: राष्ट्र बनने की सम्भावना रहती है, उसी प्रकार हरेक बोली में भी एक भाषा बनने की क्षमता विद्यमान रहती है.

इस भाषा के लचीलेपन तथा औपनिवेशिक सरकार द्वारा शिक्षा तथा न्याय व प्रशासन में इसका प्रयोग करने का भी परिणाम है कि इसने विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय भाषा व बोलियों को अपने में समाहित कर एक व्यापक भाषा के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक ख़ुद को स्थापित किया।[7] परंतु इस तरह की स्थापना एक स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं है। यह कई तरह की चुनौतियों व अंतर्विरोधों से जूझती रही है। वर्तमान भूमंडलीकरण और ग्लोबल इंग्लिश के दौर में हिंदी सहित अन्य भारतीय तथा देशी भाषाओं को भी अलग तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जिनका विश्लेषण करना यहाँ न तो प्रासंगिक है और न ही सम्भव। भारत में भाषा के विकास और विस्तार की राजनीति का, ख़ास कर आधुनिक काल में, बारीकी से अध्ययन करने की आवश्यकता है। इससे भारतीय आधुनिकता, जिसे औपनिवेशिक आधुनिकता[8] भी माना जाता है, के साथ भारत के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषकर भाषाई क्षेत्रों के संबंध को और भी व्यापक ढंग से समझा जा सकता है। दूसरे, साम्राज्यवादी ढंग से भाषा का विकास और प्रसार का प्रश्न सिर्फ़ हिंदी से ही जुड़ा हुआ नहीं है बल्कि अन्य भाषाओं जैसे कि बंगाली और असमिया में भी यह तत्त्व रहा है और जिसका व्यापक विरोध भी होता रहा है।[9]

हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में निर्माण तथा इसके प्रचार-प्रसार पर पहले से ही व्यापक अध्ययन हैं।[10] इनमें यह तथ्य उभर कर आया है कि हिंदी निस्संदेह व्यापक स्तर पर बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा है जिसे अंग्रेज़ी के बाद भारत में किसी अन्य आधुनिक भाषा की तुलना में अधिक सुयोग्य और सक्षम सम्पर्क भाषा माना जा सकता है। हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में गठन, प्रचार और प्रसार राष्ट्रीय आंदोलन एवं राष्ट्र-निर्माण के संदर्भ में हुआ है, साथ ही इसे व्यापक विरोध का भी सामना करना पड़ा है। इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना ज़्यादा उपयुक्त होगा। यह अधिक तर्कसंगत होगा यदि हम इस बात का अवलोकन करें

हिंदी निस्संदेह व्यापक स्तर पर बोली जाने वाली एक ऐसी भाषा है जिसे अंग्रेज़ी के बाद भारत में किसी अन्य आधुनिक भाषा की तुलना में अधिक सुयोग्य और सक्षम सम्पर्क भाषा माना जा सकता है। हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में गठन, प्रचार और प्रसार राष्ट्रीय आंदोलन एवं राष्ट्र-निर्माण के संदर्भ में हुआ है, साथ ही इसे व्यापक विरोध का भी सामना करना पड़ा है। ... यह अधिक तर्कसंगत होगा यदि हम इस बात का अवलोकन करें कि किस आधार पर इसको अपनाया गया और किन कारणों से इसका स्पष्ट व संगठित विरोध भी हुआ है, विशेषकर हिंदी क्षेत्र के अंदर से भी।

---

[7] बर्नार्ड एस. कोन (1996), 'लैंग्वेज ऑफ़ कमांड ऐंड कमांड ऑफ़ लैंग्वेज', *कोलोनियलिज़म ऐंड इट्स फ़ॉर्म्स ऑफ़ नॉलेज़,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन; क्रिस्टोफ़र किंग (1994), *वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट्स : द हिंदी मूवमेंट इन नाइनटिंथ सेंचुरी नार्थ इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

[8] पार्थ चटर्जी (1997), *आवर मॉडर्निटी,* साउथ-साउथ प्रोग्राम फ़ॉर रिसर्च ऑन द हिस्ट्री ऑफ़ डिवेलपमेंट (सेफिस) ऐंड द कौंसिल ऑफ़ द डिवेलपमेंट ऑफ़ सोशल साइंस रिसर्च इन अफ्रीका (कोडेसरिया), रोट्रेडम/डकार.

[9] उदयन मिश्रा (1984), 'असम साहित्य सभा : रिट्रीट फ्रॉम पॉपुलिस्ट पॉलिटिक्स', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 11, अंक 15; एम. कार (1975), 'असम्स लैंग्वेज क्वेश्चन इन रिट्रोस्पेक्ट', *सोशल सांइटिस्ट,* खण्ड 4, अंक 2, सितम्बर, पृष्ठ 25-31.

[10] अमृत राय (1991), *अ हाउस डिवाइडिड : दि ऑरिज़िन ऐंड डिवेलपमेंट ऑफ़ हिंद/हिंदवी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली; क्रिस्टोफ़र किंग (1994); आलोक राय (2007).

अधिक ब्रिटिश अफ़सरों ने भारत में प्रचलित प्राचीन भाषाओं जैसे संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के साथ कई 'गँवार' भाषाओं को भी सीखना प्रारम्भ किया। इससे भी अहम यह कि इसी दौरान अंग्रेज़ एक नये तरह के तंत्र का निर्माण शुरू कर रहे थे— व्याकरणों, शब्दकोशों, निबंधों, किताबों एवं अनुवादों का निर्माण भारतीय भाषाओं में तथा भारतीय भाषाओं से। ... इन सब प्रयासों के अलावा भी एक प्रयास चल रहा था— एक ऐसी भाषा की खोज जिसे भारत के बहुसंख्यक लोग बोलते हों। उस भाषा को नाम दिया गया— हिंदवी/ हिंदुस्तानिक/हिंदुस्तानी।

कि किस आधार पर इसको अपनाया गया और किन कारणों से इसका स्पष्ट व संगठित विरोध भी हुआ है, विशेषकर हिंदी क्षेत्र के अंदर से भी। दूसरे यदि हम हिंदी के अन्य भाषाओं पर प्रभाव या दूसरी भाषाओं के हिंदी पर प्रभाव को समझ सकें तो इससे नये तरह के तथ्य एवं भाषाई राजनीति की गूढ़ताएँ सामने आएँगी।

विद्वानों के बीच में लगभग आम सहमति है कि प्रिंट का प्रभाव, अंग्रेज़ी का प्रभुत्व, औपनिवेशिक भाषा-वैज्ञानिक तथा नीति-निर्धारक, शिक्षा के क्षेत्र में किये जा रहे मिशनरी प्रयास, कुछ ऐसे कारक हैं जिन्होंने देशीय भाषाओं के मानकीकरण एवं भाषा के आधार पर सामुदायिक पहचान की चेतना के निर्माण में काफ़ी योगदान किया। तत्पश्चात इन मानकीकृत भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ जिससे एक नये तरह के उपयोगी साहित्य-सृजन को बढ़ावा मिला जिसका उद्देश्य व्यक्ति व समुदाय के विकास पर केंद्रित था।

बर्नाड एस. कोन के अनुसार भारत में 1770-1785 का काल एक सृजनात्मक काल था जिसके दौरान अंग्रेज़ों ने भारतीय भाषाओं का उपयोग अपनी शासन-व्यवस्था मज़बूत करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण यंत्र के रूप में सफलतापूर्वक किया। अधिक से अधिक ब्रिटिश अफ़सरों ने भारत में प्रचलित प्राचीन भाषाओं जैसे संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के साथ कई 'गँवार' भाषाओं को भी सीखना प्रारम्भ किया। इससे भी अहम यह कि इसी दौरान अंग्रेज़ एक नये तरह के तंत्र का निर्माण शुरू कर रहे थे— व्याकरणों, शब्दकोशों, निबंधों, किताबों एवं अनुवादों का निर्माण भारतीय भाषाओं में तथा भारतीय भाषाओं से। इन प्रयासों का एक प्रभाव यह भी हुआ कि भारतीय ज्ञान युरोपीय परियोजना के रूप में परिवर्तित होने लगा। इन सब प्रयासों के अलावा भी एक प्रयास चल रहा था— एक ऐसी भाषा की खोज जिसे भारत के बहुसंख्यक लोग बोलते हों। उस भाषा को नाम दिया गया— हिंदवी/ हिंदुस्तानिक/ हिंदुस्तानी। अंत में यह हिंदुस्तानी ही थी जो भारत में ब्रिटिश हुकूमत की आधिकारिक/शासन की भाषा बनी।[11] यही एक भाषा है जिसे गाँधी और नेहरू ने भी औपनिवेशिक सरकार के विरुद्ध स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय भाषा के रूप में अनुमोदित किया।

परंतु इस तरह के प्रयासों से एक अलग तरह का विवाद उत्पन्न हुआ जो उन्नीसवीं सदी के अंत तक तथा बीसवीं सदी के कई दशकों तक चलता रहा। पौराणिक और देशीय भाषा के बीच का विवाद, और लिखित एवं अलिखित यानी सिर्फ़ जुबानी भाषा के बीच का विवाद। हरेक नया व्याकरण व नया शब्दकोश एक राजनीतिक वाद-विवाद को जन्म देने लगा। कुछ लोगों ने यह भी तर्क दिया, जैसे कि एस.डब्ल्यू. फ़ैलॅने,[12] कि लिखित भाषा किसी भी भाषा के प्राकृतिक विकास को

---

[11] बर्नार्ड एस. कोन (1996) : 20-21.

[12] एस.डब्ल्यू. फ़ैलॅन (1879), *अ न्यू हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी,* दि मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस.

भ्रष्ट करती है, और ऐसी भाषा पढ़े-लिखे वर्गों का ही विशेषाधिकार बन जाती है। ये वर्ग लिखित भाषा को ही अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अधिक वास्तविक मानते हैं— देशज प्राकृत भाषा की तुलना में। फ़ैलॉन के अनुसार वास्तव में ज़ुबानी भाषा ही किसी भी भाषा के जीवन को बचाये रखती है। इस तरह की अभिव्यक्ति किसी भी तरह की कृत्रिमता, जो कि लिखित भाषा में सम्भव है, से परे वास्तविकता के अधिक नज़दीक होती है। इस विवाद में उन पक्षों का प्रभाव अधिक रहा जो व्याकरण एवं शब्दकोश के माध्यम से भाषा के मानकीकरण एवं शुद्धता पर बल देते थे। बाद में इसने एक होड़ को जन्म दिया। अब हिंदी सहित लगभग सभी भाषाओं के साहित्यकार व लेखक अपनी-अपनी भाषाओं में अधिक से अधिक व्याकरणों व शब्दकोशों के निर्माण में जुट गये। यह दौर आज भी विभिन्न रूपों में जारी है। अब किसी भी भाषा के बोलने वालों के लिए यह आवश्यक हो गया कि यदि वे अपनी भाषा में भी अभिव्यक्ति कर रहे हैं तो उसे शुद्ध तभी माना जाएगा जब वह उस भाषा के व्याकरण का अनुपालन करें। इस तरह के प्रयासों का भारत में मौखिक परम्परा, जो साहित्यिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अहम भूमिका निभाती रही है, पर क्या प्रभाव पड़ा, इसके विस्तृत एवं तुलनात्मक अन्वेषण की भी आवश्यकता है।

हिंदुस्तानी के, जिसकी स्थापना भारत की आधिकारिक भाषा के रूप में हो चुकी थी, जॉन गिलक्रिस्ट[13] के मतानुसार तीन स्तर व रूप थे। पहला उच्च न्यायालय और फ़ारसी रूप; दूसरा, मध्य व वास्तविक हिंदुस्तानी, तीसरा, गँवारी व हिंदवी। यह एक रोचक तथ्य है कि गिलक्रिस्ट के अनुसार हिंदुस्तानी एक भाषा के रूप में हिंदू और मुसलमान दोनों द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी। फिर इसका विभाजन 'हिंदी' व 'उर्दू' के रूप में हुआ, जो बाद का विकास है और जो राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में और भी तीव्र हुआ।[14] वसुधा डालमिया[15] के अनुसार औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन की रुचि और उद्देश्य किसी भी भारतीय भाषा का एक सामूहिक संचार के माध्यम के रूप में विकास करना नहीं था। आधुनिक हिंदी गद्य का विकास और शब्दकोशों व व्याकरणों के मानकीकरण में पहले मिशनरियों तथा स्कूली किताबों के लेखकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिंदी को हिंदुओं की भाषा के रूप में देखने का विकास व्यापक क्षेत्रीय और वैचारिक आकांक्षाओं के साथ हुआ जिसे राष्ट्रवादियों ने भी अपनाया। उसके बाद इसका विकास मुख्य रूप से इसी तर्ज़ पर होता चला गया।

डालमिया के अनुसार हिंदी के विकास को, इसके पहले क्षेत्रातिरिक्त स्तर पर, फिर राष्ट्रीय स्तर पर हिंदू संस्कृति और धर्म की पहचान से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। हिंदी का हिंदुओं की भाषा के रूप में विकास पूरी उन्नीसवीं शताब्दी तक चलता रहा। इसे तीन स्तरों पर देखा जा सकता है : पहला, यह एक प्रयास था हिंदी को उर्दू से अलग कर उसकी स्वतंत्र स्वायत्तता स्थापित करने का। दूसरा, इस तरह से अलगाव के बाद इस भाषा का मानकीकरण व्याकरणों, शब्दकोशों तथा स्कूली किताबों के माध्यम से किया जाना। उन सभी शब्दों का जो उर्दू (जिसे हिंदी का शत्रु समझा जाने लगा था) के नज़दीक थे, का प्रतिस्थापन उन शब्दों से किया जाना जो उर्दू से अलग हों। तीसरा, मानकीकरण के साथ ऐतिहासिकीकरण भी आया, अर्थात हिंदी का ऐतिहासिक संबंध उन साहित्यिक ग्रंथों के साथ क़ायम किया जाने लगा जिनका संबंध अतीत के प्रमुख वैचारिक आंदोलनों से था। प्रस्तुत आलेख के अगले भाग में मैं हिंदी के इस ऐतिहासिकीकरण के प्रयासों तथा इसके विरोध का वर्णन मैथिली के संदर्भ में करूँगा।

---

[13] बर्नार्ड एस. कोन (1996) : 36.

[14] क्रिस्टोफ़र किंग (1994); आलोक राय (2007).

[15] वसुधा डालमिया (1997) : 147-148.

फ्रेंचेस्का ओरसिनी के अनुसार हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में दावा एक वैचारिक निर्मिति था। राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न सर्व समाहित धार्मिक समुदाय के भक्ति के सिद्धांत के प्रश्न से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। जिस तरह से भक्ति का मार्ग सभी के लिए खुला है और अपने आप में साध्य और साधन, दोनों है, उसी प्रकार राष्ट्रीय भाषा को इस रूप में प्रचारित किया गया जिससे एक राष्ट्रीय समुदाय का, जो कि सभी के लिए हो, गठन हो सके और एकता की भावना को बनाये रखा जा सके।

फ्रेंचेस्का ओरसिनी[16] के अनुसार हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में दावा एक वैचारिक निर्मिति था। राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न सर्व समाहित धार्मिक समुदाय के भक्ति के सिद्धांत के प्रश्न से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। जिस तरह से भक्ति का मार्ग सभी के लिए खुला है और अपने आप में साध्य और साधन, दोनों है, उसी प्रकार राष्ट्रीय भाषा को इस रूप में प्रचारित किया गया जिससे एक राष्ट्रीय समुदाय का, जो कि सभी के लिए हो, गठन हो सके और एकता की भावना को बनाये रखा जा सके। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी को लोकप्रिय बनाने के अलावा 'निज भाषा' का संबंध 'राष्ट्रीय भाषा' से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनका कहना था कि बग़ैर एक सामान्य भाषा के न तो राष्ट्रीय गर्व का उदय हो सकता है और न ही राष्ट्रीय एकता बन सकती है। सिर्फ़ हिंदी ही राष्ट्रीय स्तर की भाषा बन सकती है। अन्य लोगों में जिन्होंने हिंदी के विस्तार में मुख्य भूमिका निभायी, उनमें प्रमुख थे— मदन मोहन मालवीय, पुरुषोत्तम दास टंडन, गणेश शंकर विद्यार्थी, आचार्य नरेंद्र देव, बाबू सम्पूर्णानंद, इत्यादि।

हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकास करने के लिए कांग्रेस का सहयोग अति-आवश्यक था। यह सहयोग इस भाषा को मिला जब 1918 में महात्मा गाँधी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन, इंदौर की अध्यक्षता करते हुए स्वीकार किया कि 'जब तक सार्वजनिक कार्य हिंदी में नहीं होता, देश विकास नहीं कर सकता। जब तक कांग्रेस अपनी सभी कार्यवाही राष्ट्रभाषा में नहीं शुरू करती, हम स्वराज नहीं पा सकते हैं।'[17] कांग्रेस ने नागपुर अधिवेशन (1920) में अपनी प्रादेशिक इकाइयों का गठन भाषायी आधार पर करने का निर्णय लिया। 1928 में मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन भारत में पूर्ण और ज़िम्मेदार सरकार की स्थापना के लिए, एक संविधान बनाने के लिए हुआ। इस कमेटी ने अपने अनुमोदन में कहा कि प्रदेशों के पुनर्निर्माण में कुछ भौगोलिक तथा कुछ आर्थिक व वित्तीय कारकों पर ध्यान देना चाहिए, परंतु *इसका मुख्य आधार उस प्रदेश की भाषाई एकता होनी चाहिए।* कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन (1937) में फिर से भाषाई आधार पर प्रांतों के पुनर्निर्माण की बात दोहरायी गयी और आंध्र और कर्नाटक की रचना का अनुमोदन किया गया।[18]

---

[16] फ्रेंचेस्का ओरसीनी (2002) : 126.

[17] वही : 358.

[18] सजल बसु (1992), *रीजनल मूवमेंट्स : पॉलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज, एथ्निसिटी-आइडेंटिटी,* मनोहर पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

राष्ट्र-निर्माण के लिए हिंदी का उपयोग एवं प्रचार-प्रसार किस तरह से एवं किन स्तरों पर किया गया, वह इस तथ्य से और परिलक्षित होता है, 'कुछ, युवकों को दक्षिण से इलाहाबाद प्रशिक्षण के लिए भेजा गया तथा गाँधी के आश्रम से हरिहर शर्मा को हिंदी पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए मद्रास भेजा गया। गाँधी ने अपने छोटे बेटे देवदास (जो उस समय हिंदी नहीं जानते थे) तथा अनुभवी उपदेशक स्वामी सत्यदेव 'परिव्राजक' को भी भेजा। अट्ठारह वर्ष में छह लाख दक्षिण भारतीयों को हिंदी सिखायी गयी, बयालीस हज़ार विशेष परीक्षा के लिए बैठे और छह सौ शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया जो चार सौ पचास केंद्रों में काम करते थे।'[19]

मिथिला : हिंदी और मैथिली विमर्श

मौजूदा बिहार के गठन (1911) से बहुत पहले इसके उत्तरी मैथिलीभाषी क्षेत्र का, जिसे मिथिला कहा जाता है, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषिक, साहित्यिक एवं आर्थिक किसी भी दृष्टि से स्वतंत्र अस्तित्व प्राचीन काल से ही चला आ रहा है।[20] मैथिली एक इंडो आर्यन भाषा है जो कि भारत के उत्तरी बिहार तथा नेपाल की तराई में बसने वाले लोगों द्वारा बोली जाती है। पॉल आर. ब्रास[21] के अनुसार भागलपुर, पूर्णिया, सहरसा, दरभंगा[22] और मुज़फ़्फ़रपुर मिथिला का भौगोलिक क्षेत्र दर्शाते हैं। 1985 की एक प्रोजेक्ट रिपोर्ट[23] के अनुसार तत्कालीन बिहार के 31 में से दस ज़िलों को मैथिली भाषा क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए— भागलपुर, कटिहार, सहरसा, मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर, सीतामढ़ी, मुज़फ़्फ़रपुर तथा वैशाली। मिथिला के लिए अलग राज्य की माँग करने वाली प्रमुख संस्थाओं में प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय मिथिला परिषद के अनुसार मिथिला क्षेत्र के तहत ये ज़िले सम्मिलित हैं— पश्चिमी चम्पारण, पूर्वी चम्पारण, शिवहर, सीतामढ़ी, मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर, मुज़फ़्फ़रपुर, सहरसा, वैशाली, खगड़िया, बेगूसराय, मधेपुरा, सुपौल, किशनगंज, अररिया, पूर्णिया, कटिहार, लखीसराय, मुंगेर, भागलपुर, जमुई, बांका, गोड्डा, साहिबगंज, देवघर, दुमका और पाकुर।[24] यह क्षेत्र जिसे भारत में प्रस्तावित मिथिला प्रांत बताया गया है, पौराणिक के साथ-साथ सर ग्रियर्सन के 1902 के भाषा-सर्वेक्षण के आधार पर निर्धारित किया गया है। परंतु वास्तविकता में मैथिली भाषी क्षेत्र का स्थायी-निर्धारण अब भी विवादित है।[25] इसकी प्रमुख वजह यह है कि भाषायी सीमा का निर्धारण औपनिवेशिक काल से पहले पूरी तरह स्पष्ट नहीं था।[26] एक भाषा अक्सर अपनी सीमा के बाहर दूसरी भाषाओं से मिल जाती थी, और कुछ परिवर्तित रूप में ही सही, प्रायः भाषाई चेतना के

---

[19] विस्तार के लिए देखें फ्रांचेस्का ओरसिनी (2002) : 359, पाद टिप्पणी संख्या 130.

[20] *मिथिला समाचार,* वर्ष 33, अंक 1 से 24, पृष्ठ 7, यह लेख 15 अगस्त 1947 को आर्यावर्त में भी छपा था।

[21] पॉल आर. ब्रास (1975), 'दि मैथिली लैंग्वेज मूवमेंट्स इन नार्थ बिहार', पॉल आर. ब्रास, *लैंग्वेज रिलीजन ऐंड पॉलिटिक्स इन नार्थ इंडिया* , कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज.

[22] वर्तमान में तीन अलग-अलग जिलों दरभंगा, मधुबनी और समस्तीपुर में विभाजित.

[23] उदय नारायण सिंह, प्रदीप कुमार बोस, ऐन. राजाराम (1985), *द मैथिली लैंग्वेज मूवमेंट इन नॉर्थ बिहार : अ सोशियो लिंग्विस्टीक इन्वेस्टीगेशन,* साउथ गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत (अप्रकाशित).

[24] 28 वें मैथिली कार्यकर्ता दिवस, पद्मा, मधुबनी, 28 अप्रैल से 1 मई 2012 के अवसर पर प्रचारित पैम्फलेट के आधार पर.

[25] इस पर अभी भी आम सहमति का अभाव है पुराणों के अनुसार यह क्षेत्र पूर्व में कौशिक, पश्चिम में गंडकी और दक्षिण में गंगा से लेकर उत्तर में हिमालय के जंगलों के बीच स्थित है। देखें, उपेन्द्र ठाकुर (1998), *हिस्ट्री ऑफ़ मिथिला,* मिथिला रिसर्च इंस्टिट्यूट, दरभंगा.

[26] इसे सुदीप्त कविराज के 'फज़ी' और 'इन्युमुरेटेड' समुदाय के आधार पर भी समझा जा सकता है। सुदीप्त कविराज, (1992), 'इमैजिनरी इंस्टिट्यूशन्स इन इंडिया', पार्थ चटर्जी और ज्ञानेंद्र पाण्डे (सम्पा.), *सबॉल्टर्न स्टडीज़,* खण्ड 7, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

कारण यह स्थिति आज भी है। मैथिली के संदर्भ में दुर्गानाथ झा[27] बताते हैं कि मैथिली अपने मुख्य केंद्र से, जिसे मुख्य रूप से दरभंगा-मधुबनी का क्षेत्र माना जा सकता है, विलीन होने लगती है। पूर्व में यह पूर्णिया की भाषा से मिल जाती है (बंगाली से प्रभावित), दक्षिण पूर्व में भागलपुर और मुंगेर की भाषा से (मगही से प्रभावित), पश्चिम में मुज़फ़्फ़रपुर और चम्पारण की भाषा से (भोजपुरी से प्रभावित) और उत्तर-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम में सीतामढ़ी तथा मोरंग की भाषा से मिल जाती है। इस तरह से हम देखते हैं कि मैथिली भाषा के क्षेत्र का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है।[28] इस तरह के विवादों को जन्म देने में जनगणना की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता है। मैथिली के संदर्भ में जनगणना की भूमिका कभी भी निष्पक्ष नहीं रही है, जैसा कि बुरघार्ट बताते हैं कि बीसवीं सदी के दूसरे दशक में मैथिली को हिंदी का ही अंग माना गया क्योंकि वह बंगाली नहीं है वहीं पाँचवें दशक में इसे हिंदी का ही भाग माना गया क्योंकि देश की एकता के लिए यह आवश्यक था कि देश के अधिक से अधिक भागों की भाषा हिंदी हो।[29] अत: हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के, विशेषकर हिंदी प्रदेश के भीतर की, बोलने वालों की संख्या कम करके आँकने की प्रकृति सी बन गयी। जिसमें एक नया मोड़ 1961 जनगणना के बाद से आया, लोग राज्य पुनर्गठन आयोग के गठन एवं भाषाधार के प्रांतों के पुनर्विभाजन से भाषा को लेकर जागरूक थे ही, अब वे जनगणना रिपोर्ट में अपनी संख्याएँ अधिक दर्शाने के लिए प्रयत्नशील हुए, जिसे मैथिली के संदर्भ में हम इस ढंग से देख सकते हैं। जनगणना रिपोर्ट 1971, 1981, 1991, 2001 के अनुसार मैथिली भाषा-भाषियों की संख़्या क्रमश: 6,130,026; 7,522,265, 7,766,921 तथा 12,179,122 है। इस प्रकार 1961-1971, 1971-198 1, 1981-9191 एवं 1991-2001 के मध्य जनगणना रिपोर्ट के अनुसार मैथिली बोलने वालों की संख्या में क्रमश: 23, 6.39 %, 3.25, एवं 56%वृद्धि पाते हैं। ज्ञातव्य है कि 1971, 1981 एवं 1991 में मैथिली बोलने वालों की संख्या का आकलन हिंदी भषा के अंदर ही एक अलग मातृभाषा के रूप में किया गया था। हालाँकि ये आँकड़े मैथिली संगठनों द्वारा नहीं माने जाते है, क्योंकि उनके अनुसार जब ग्रियर्सन ने बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में मैथिली भाषियों की संख्या एक करोड़ बतायी है तो छह दशकों में यह संख्या इतनी कम कैसे हो सकती है जबकि कुल जनसंख्या में कई गुणा वृद्धि हुई है? जनगणना के आँकड़े वास्तव में मैथिली भाषी संख्या को प्रामाणिक रूप से दिखा पाते हैं कि नहीं— यह एक विवादित प्रश्न है। एक अनुमान के तहत मैथिलीभाषियों की वर्तमान जनसंख्या 6-8 करोड़ के आसपास है। अत: जहाँ जनगणना की भूमिका संदेहास्पद है वहीं भाषा पर आधारित राजनीति में एक नया आयाम दिखने लगा है। अब भाषा के महत्त्व का आकलन उसकी अभिव्यक्ति क्षमता तथा साहित्य सृजन न होकर उसके बोलने वालों की संख्या पर अधिक निर्भर होने लगा।

मिथिला की अपनी एक प्राचीन सभ्यता रही है, जो इसे एक विशिष्ट पहचान देती है। संस्कृत भाषा के माध्यम से यहाँ के लोग देवनागरी से परिचित थे ही, और संस्कृत का प्रभाव इस क्षेत्र पर इतना अधिक था कि बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक भी, जब भारत के अन्य भागों में अंग्रेज़ी तथा अन्य देशीय भाषाओं का प्रचार, प्रसार एवं विकास हो रहा था, मिथिला में संस्कृत शिक्षा के प्रचार, प्रसार एवं संरक्षण पर बल दिया जा रहा था। 1860 में जब दरभंगा राज कोर्ट ऑफ़ वॉर्ड्स के अधीन चल गया, तब भाषा तथा आधुनिक शिक्षा से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गये। अंग्रेज़ी तर्ज़

[27] रिचार्ड बुरघार्ट, 'ए क्वैरेल इन द लैंग्वेज फैमिली; एजेंसी ऐंड रिप्रज़ेंटेशन ऑफ़ स्पीच इन मिथिला' *मॉडर्न एशियन स्टडीज़,* खण्ड 27, अंक 4.

[28] वैसे किसी भी भाषा क्षेत्र के बारे में यह बात कही जा सकती है. क्योंकि भाषा अभिव्यक्ति का साधन है जिसे भौगोलिक सीमा के आधार पर स्पष्ट रूपेण निर्धारित नहीं किया जा सकता है. किसी भी क्षेत्र का निर्माण एक निर्माणाधीन प्रक्रिया है जो विवाद से परे नहीं है.

[29] रिचार्ड बुरघार्ट (1993).

पर कई देशी स्कूलों का निर्माण हुआ। सरकारी अफ़सरों ने मान लिया कि इस क्षेत्र की कोई अपनी भाषा व साहित्य नहीं है, और पश्चिमी हिंदी का स्कूल में उपयोग करने के अतिरिक्ति उनके पास कोई विकल्प नहीं है। इस तथ्य को कि मिथिला का अपना एक साहित्य है, भाषा है, उसकी लिपि भी अलग है— तिरहुता या मिथिलाक्षर— को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ किया गया। इस तरह हम कह सकते हैं कि भाषा का प्रश्न अपने आप में ब्रिटिश अफ़सरों के लिए किसी महत्त्व का नहीं था, जब तक वह उसके प्रशासनिक कार्यों के लिए आवश्यक नहीं हो।[30] इस तरह से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि औपनिवेशिक सरकार ने उस समय मैथिली का ही इस्तेमाल स्कूली शिक्षा में किया होता तो आज इसका स्वरूप क्या होता?

इसी दशक में कुछ ऐसे लोगों का मैथिली साहित्य के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ जिससे मैथिली के रास्ते की बाधाएँ हटीं। ... फिर भी हिंदी के प्रभाव को कम करके नहीं आँका जा सकता है, क्योंकि इनमें सबसे प्रमुख चंदा झा, जिन्हें मैथिली साहित्य के आधुनिक काल का प्रवर्तक माना जा सकता है, पर हिंदी के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन्होंने विद्यापति रचित संस्कृत ग्रंथ *पुरुष परीक्षा* के मैथिली अनुवाद की भूमिका हिंदी में तथा स्थान-स्थान पर मुख्य टिप्पणी भी हिंदी में लिखी है।

कुछ ही वर्षों के भीतर किसी संगठित विरोध के अभाव में हिंदी आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की एक स्थायी विशेषता बन गयी। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के एक आदेश ने (14 जुलाई 1880) हिंदी को प्रमुख भाषा तथा मैथिली को गौण भाषा बनाने में प्रमुख भूमिका निभायी : 'मैं पहले ही अपने कार्यालय में हिंदी लिपि तथा भाषा का प्रयोग करने का आदेश दे चुका हूँ। परंतु यह तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि मेरा देशीय भाषा जानने वाला अमला ठीक ढंग से इस लिपि को सीख नहीं लेता, जिससे कि वो इसे धाराप्रवाह लिख-पढ़ सके। अतः मुझे यह आदेश बाध्य होकर देना पड़ रहा है। वह यह कि शीघ्र ही सभी अमला हिंदी लिपि और भाषा सीखने में लग जाएँ। इसे सीखने के लिए मैं उन लोगों को तीन महीने का समय देता हूँ। अतः नवम्बर तक उनको इसे अच्छे ढंग से सीख लेना चाहिए जिससे कि मुझे अपने पुराने कर्मचारियों को पेंशन देकर हटाने अथवा छँटनी करने का दुःखद प्रयोजन न करना पड़े।'[31]

इस तरह से देखा जा सकता है कि हिंदी का प्रचलन इस क्षेत्र में किस तरह से शुरू किया गया। इसे प्रचार और स्वीकार में कई तरह की असुविधाओं का सामना करना पड़ा। विद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों को इलाहाबाद से मँगाया जाता था जिन्हें समझना लोगों के लिए दुष्कर था। 1869 में तिरहुत डिवीज़न के स्कूल निरीक्षक का कथन था कि 'अधिकांश शिक्षक जिन्हें हिंदी शिक्षक कहा जाता है, ठीक से हिंदी की पहली पोथी की वर्णमाला भी नहीं जानते। अधिकतर उर्दू शिक्षक इतिहास, भूगोल, रेखागणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति, वर्गमूल, मूल और गौण अर्थ, पद

[30] जयदेव मिश्रा (1981), *चन्दा झा,* साहित्य अकादेमी; नयी दिल्ली : 17.

[31] वही : 22.

निरूपण आदि शब्द सुनकर आश्चर्यचकित होते हैं, क्योंकि इन शब्दों को उन्होंने अपने पूरे जीवन में नहीं सुना'।[32] डॉ. जयदेव मिश्र के अनुसार : 'अनिच्छुक समाज के लिए हिंदी प्राय: विदेशी बोली थी। यह निश्चित था कि हिंदी को लोगों पर उसके मनोभाव व शैक्षणिक आवश्यकता पर बिना विचार किये थोपा जा रहा था। परंतु जिसे मध्यमवर्ग कहा जा सकता है, जिसे उच्च वर्ग से— जिसका प्रतिनिधित्व महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह कर रहे थे— अलग करके पहचाना जा सकता था, का उस अधिकारी वर्ग पर कोई प्रभाव नहीं था जो मातृभाषा मैथिली की उपेक्षा कर स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई करने पर तुला था। दरअसल अधिकारीगण जानते थे कि खिन्न और क्रुद्ध रहते हुए भी यहाँ के लोग इतने असंगठित हैं कि इसका विरोध करने में निष्क्रिय रहेंगे।'[33]

इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद इसी दशक में कुछ ऐसे लोगों का मैथिली साहित्य के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ जिससे मैथिली के रास्ते की बाधाएँ हटीं। इनमें से प्रमुख थे जॉर्ज ग्रियर्सन, कवीश्वर चन्दा झा, हर्षनाथ झा, भानुनाथ झा, प्रसिद्ध भाना झा, लाल दास, कविवर जीवन झा, आदि। फिर भी हिंदी के प्रभाव को कम करके नहीं आँका जा सकता है, क्योंकि इनमें सबसे प्रमुख चन्दा झा, जिन्हें मैथिली साहित्य के आधुनिक काल का प्रवर्तक माना जा सकता है, पर हिंदी के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन्होंने विद्यापति रचित संस्कृत ग्रंथ *पुरुष परीक्षा* के मैथिली अनुवाद की भूमिका हिंदी में तथा स्थान-स्थान पर मुख्य टिप्पणी भी हिंदी में लिखी है। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के आदेश से ही इन्होंने *मिथिला भाषा रामायण* लिखी, जो मिथिला में अधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मैथिली के प्राचीन ग्रंथों के शोध तथा सम्पादन का कार्य भी किया। वे मिथिला का प्रामाणिक इतिहास लिखने के लिए सामग्री को एकत्र कर रहे थे। ऐसा माना जाता है कि परमेश्वर झा द्वारा रचित *मिथिला तत्त्व विमर्श,* जिसे मैथिली का प्रथम ऐतिहासिक ग्रंथ होने का गौरव हासिल है, चंदा झा द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर लिखा गया है।

मैथिली पत्र-पत्रिकाओं, जिसमें जयपुर से प्रकाशित *मैथिली हित साधन,* तथा बनारस से प्रकाशित *मिथिला मोद को* प्रारम्भिक माना जाता है, तदनंतर *मिथिला मिहिर*[34]*, मिथिला, श्री मैथिली, भारती* आदि के प्रकाशन से मैथिली भाषा-साहित्य के विकास को और अधिक बल मिला। परन्तु इन प्रयासों में हिंदी का पूरी तरह से बहिष्कार नहीं किया गया था, जैसा कि *मिथिला मिहिर* के अधिकांश अंकों से मालूम होता है। इन अंकों में अधिकांश सामग्री हिंदी में ही प्रकाशित होती थी, प्राय: आधे से भी अधिक। मैथिली भाषा आंदोलन को, जो कि प्रारम्भ में हिंदी की उस साज़िश के विरोध में था जिसके अंतर्गत मैथिली को एक स्वतंत्र भाषा के रूप में ही नहीं स्वीकारा जाता था, धीरे-धीरे एक नयी दिशा मिली। किस तरह से मैथिली को हिंदी में समाहित करने का प्रयास चल रहा था, उसे आरा से प्रकाशित *भारती* की, उस आलोचना से समझा जा सकता है, जिसमें *मिथिला मिहिर* को इसलिए आड़े हाथों लिया गया था कि इसमें कुछ पृष्ठ मैथिली के लिए भी सुरक्षित रखे गये थे। पत्र में लिखा है, 'अब की बार मैथिल कॉन्फ्रेंस में यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ है कि यथासाध्य मैथिली भाषा में पुस्तकें लिखकर मैथिली में प्रचार किया जाए। *मिथिला मिहिर* के चौथे प्रकाश का उद्घोष मैथिली भाषा से भरा हुआ है। ऐसी दशा में कहना अनुचित नहीं है कि मैथिल लोग पीछे से अपने अन्यान्य भाइयों को खींच रहे हैं। *मिथिला मिहिर* में जैसी मैथिली लिखी जाती है इससे सभी विचारवान समझ सकते हैं कि इसके द्वारा विद्या प्रचार नहीं हो सकता, क्योंकि *क्रियापद और विभक्तियों के अतिरिक्त*

---

[32] वही : 18.

[33] शम्भुनाथ मिश्र (1991), *मैथिलीक दधीचि बाबू भोला लाल दास,* कर्नमित्र, कोलकाता : 3.

[34] मैथिली में सबसे प्रतिष्ठित एवं सबसे लम्बे समय तक चलने वाली पत्रिका जो कि दरभंगा राज के संरक्षण में प्रकाशित होती थी. इसका प्रकाशन आजकल बंद है.

यह हिंदी ही है। इससे मैथिली में विद्या प्रचार का स्वप्न देखना शेख़चिल्लियों के सिवा दूसरों को नहीं सोहाता।'[35]

दरअसल, उस युग में हिंदी का तीव्र विरोध हुआ ही नहीं। बाद में भी हिंदी का राष्ट्रीय भाषा के रूप में भी कोई विरोध नहीं हुआ। हिंदी के विरोध का स्वर अधिक मुखर होने का कारण था हिंदी के प्रवर्तकों के द्वारा यत्नपूर्वक मैथिली को एक स्वतंत्र भाषा के रूप में मान्यता एवं स्थान देने की मुख़ालफ़त और अकारण ही मैथिली के विकास को हिंदी के विकास के लिए ख़तरा मान लेना। 1914 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन भागलपुर में हुआ। इसके बारे में गिरींद्र मोहन मिश्र[36] लिखते हैं कि इस सम्मेलन का एक विषय था 'मैथिली और हिंदी' जिस पर उन्होंने एक लेख लिख कर सम्मेलन के मंत्री को भेजा था। इस पत्र में उन्होंने मैथिली को हिंदी का एक अंग मात्र मानने की दलील दी थी। इसी सम्मेलन में कुछ दिन पूर्व बिहार प्रांत की प्रारम्भिक पाठशाला में शिक्षा के माध्यम को लेकर कुछ विवाद उत्पन्न हो गया था। मैथिली भाषा-भाषी लोगों की तरफ़ से दिये गये एक प्रस्ताव, जिसे समाचार पत्रों में भी प्रकाशित किया गया था, में माँग की गयी थी कि मिथिला में प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मैथिली ही हो, हिंदी नहीं। बिहार प्रांत के अन्य भागों के लोगों को यह स्वीकार्य नहीं था। उन्हें उनकी मातृभाषा मगही व भोजपुरी होते हुए भी प्राथमिक शिक्षा का माध्यम हिंदी के होने में कोई आपत्ति नहीं थी। मैथिली भाषाभाषी लोगों में इस विषय पर मतभेद था। विशेषकर भागलपुर तथा मुंगेर के लोगों को मैथिली की अपेक्षा हिंदी का शिक्षा का माध्यम बने रहना उचित और लाभप्रद लगता था। इन लोगों के अनुसार बिहार प्रांत में प्रचलित भिन्न-भिन्न भाषाएँ हिंदी का ही रूपांतर हैं। परन्तु अधिकांश मैथिली भाषी मैथिली को ही प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। मैथिली भाषा के संबंध में प्रकाशित उपरोक्त प्रस्ताव के विरोध में एक प्रस्ताव पेश करना सम्मेलन में आये कई प्रतिनिधियों को उचित जान पड़ा। इसलिए अधिवेशन के पहले दिन रात में निर्वाचन समिति की बैठक में इस प्रकार का एक प्रस्ताव रखा गया जिसके अनुसार बिहार प्रांत की प्राथमिक शिक्षा का माध्यम हिंदी मानने का अनुमोदन किया गया। बाद में न चाहते हुए भी, राजेंद्र प्रसाद जब ख़ुद ही इस प्रस्ताव को रखने के लिए अग्रसर हुए, तो गिरींद्र मोहन मिश्र को यह प्रस्ताव चर्चा के
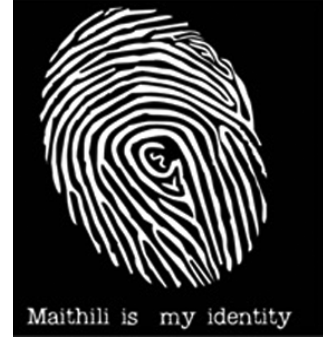
कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली को मान्यता 1918 में मिली जिसके पीछे ब्रजमोहन ठाकुर एवं बबुआजी मिश्र का उद्यम था। श्रीनगर एस्टेट के राजा कालिकानंद सिंह तथा बनैली के राजा टंकनाथ चौधरी के आर्थिक सहयोग (साढ़े सात तथा साढ़े तीन हज़ार रुपये क्रमशः) से तथा तत्कालीन उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी के प्रयासों से यह सम्भव हो सका। तत्पश्चात मैथिली के उत्थान में लगे कुछ प्रमुख व्यक्तियों के प्रयास से बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भी मैथिली को मान्यता मिल गयी।

---

[35] *मिथिला मोद,* उद्गार 56, पृष्ठ 11-12, शम्भुनाथ मिश्र (1991) में उद्धृत, पृष्ठ 6.

[36] गिरींद्र मोहन मिश्र, *किछु देखल किछु सुनल,* नव भारत प्रेस, लहेरियासराय, साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत रचना.

मैथिली भाषियों ने एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का कभी विरोध नहीं किया परंतु जब हिंदी के कुछ प्रचारकों ने मैथिली को हिंदी की ही एक बोली के रूप में प्रचारित करना शुरू कर दिया तो इसका विरोध होने लगा। विशेषकर 1920 और 1930 के दशकों में यह विरोध सबसे तीव्र था। बाद के दशकों में भी दोनों भाषाओं के बीच का संबंध अंतर्विरोधों से भरा हुआ रहा है।

लिए सम्मेलन के समक्ष रखना पड़ा जिसे सर्वसम्मति से स्वीकृत कर लिया गया। हालाँकि कुछ लोगों ने अनुपस्थित रहकर— जैसे राजा कृत्यान्द सिंह बहादुर, जो कि स्वागत समिति के अध्यक्ष भी थे— अपना विरोध दर्ज किया था। बाद में, जब गिरींद्र मोहन मिश्र की मुलाक़ात मैथिली भाषा व साहित्य के प्रखर विद्वान बाबू रघुनंदन दास से हुई, तो उन्होंने उस समय अपनी यह भूल सार्वजनिक रूप से स्वीकार की।

हिंदी और मैथिली का संबंध किस तरह के अंतर्विरोधों से भरा हुआ है इसे 1914 की ही एक अन्य घटना से समझा जा सकता है। बड़गाम के सरस्वती पुस्तकालय की वार्षिकी के अवसर पर बाबू भोला लाल दास— जिन्होंने मैथिली साहित्य परिषद की स्थापना, बिहार शिक्षा निदेशालय तथा पटना विश्वविद्यालय में मैथिली की स्वीकृति में, प्रमुख भूमिका निभायी थी— ने एक लेख हिंदी में भेजा जिसमें उन्होंने हिंदी के समक्ष मैथिली के उत्थान की बात सोचना 'कछुए की मंथर गति की चाल से रेलगाड़ी को पकड़ने के प्रयास' जैसा ही हास्यास्पद माना था। वे भी मुंशी रघुनंदन दास से ही प्रेरणा ग्रहण कर मैथिली के प्रचार-प्रसार के लिए अग्रसर हुए। बाद में भी उन्होंने हिंदी के विकास को मैथिली के विकास के लिए ख़तरा नहीं माना।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली को मान्यता 1918 में मिली जिसके पीछे ब्रजमोहन ठाकुर एवं बबुआजी मिश्र का उद्यम था। श्रीनगर इस्टेट के राजा कालिकानन्द सिंह तथा बनैली के राजा टंकनाथ चौधरी के आर्थिक सहयोग (साढ़े सात तथा साढ़े तीन हज़ार रुपये क्रमश:) से तथा तत्कालीन उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी के प्रयासों से यह सम्भव हो सका। तत्पश्चात मैथिली के उत्थान में लगे कुछ प्रमुख व्यक्तियों के प्रयास से बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भी मैथिली को मान्यता मिल गयी।[37] कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली को स्वीकृति मिलने के बाद ही पटना विश्वविद्यालय कलकत्ता विश्वविद्यालय से अलग हुआ था। अत: स्वभाविक रूप से उसे मैथिली को मान्यता दे देनी चाहिए थी, परंतु इसके लिए मैथिली को लगभग दो दशकों तक संघर्ष करना पड़ा। 1925 में जब एक बंगाली सदस्य ने पटना विश्वविद्यालय में मैथिली को स्वीकृति देने के लिए एक प्रस्ताव रखा तो एक मैथिलभाषी डॉ. जनार्दन मिश्र ने उसका विरोध किया और वह प्रस्ताव स्थगित हो गया।[38] 5 अप्रैल 1931 को दरभंगा में मैथिली साहित्य परिषद की स्थापना हुई, और उसमें सर्वसम्मति से मैथिली की स्वीकृति का प्रस्ताव पारित कर पटना विश्वविद्यालय तथा शिक्षा विभाग में भेजने का निश्चय किया गया। 1933 के आसपास पटना विश्वविद्यालय की सीनेट की एक उपसमिति ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें मैथिली के संबंध में कहा गया था कि यह मगही एवं भोजपुरी की तरह ही हिंदी की एक बोली है।[39]

---

[37] जटाशंकर दास (1999), *बाबू भोला लाल दास,* साहित्य अकादेमी, दिल्ली : 36-37.

[38] वही : 37.

[39] वही : 40.

मैथिली साहित्य परिषद के तीसरे अधिवेशन (1933) में संघर्ष को कुछ तीखे आयाम मिले। अपने अध्यक्षीय भाषण में उमेश मिश्र ने मैथिली विरोधी ताक़तों की आलोचना करते हुए मैथिली की प्राचीनता एवं साहित्यिक समृद्धि से परिचय करवाने के लिए, आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में मैथिली के स्थान, मैथिली भाषा की सीमा, बोलने वालों की संख्या, मैथिली साहित्य की गौरवशाली प्राचीन परम्परा, मैथिली में विद्यमान विस्तृत साहित्य, मैथिली की स्वतंत्र लिपि आदि के बारे में विस्तार से व्याख्या की।[40] परिषद के अगले अधिवेशन, लहेरियासराय के अध्यक्ष, राजस्थान की अलवर स्टेट के मुख्य न्यायाधीश तथा मैथिली के प्रथम पत्र *मैथिल हित साधन* के संस्थापक रामभद्र झा ने अपने भाषण में हिंदी और मैथिली की भिन्नता, मैथिली का स्वतंत्र अस्तित्व और आत्मनिर्भरता आदि पर अपने विचार व्यक्त किये थे। उन्होंने अपने भाषण में ऐसे कई मैथिल शब्दों की सूची प्रस्तुत की थी जिसकी अभिव्यक्ति हिंदी में सम्भव नहीं थी। उन्होंने मैथिली का स्वतंत्र व्याकरण, रचना, लोकोक्ति इत्यादि के अनेकों उदाहरण देकर मैथिली की स्वतंत्र सत्ता प्रमाणित की।[41] मैथिली के संबंध में एक राय यह भी प्रचलित थी कि यह केवल मैथिल ब्राह्मणों एवं कर्ण कायस्थों की भाषा है।[42] यहाँ तक कि पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति सच्चिदानंद सिन्हा इसे 'चंद लाल दासों' की भाषा मानते थे। इस लिहाज़ से मुज़फ़्फ़रपुर में हुआ मैथिली साहित्य परिषद का छठा अधिवेशन काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसमें विभिन्न जाति समूहों के लोगों को मैथिली आंदोलन से जोड़ने का प्रयास किया गया था।[43] इस अधिवेशन का मैथिली आंदोलन के आगे के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। पटना विश्वविद्यालय में मैथिली की अवहेलना से कई विदेशी विद्वान भी, जो मैथिली के प्राचीन साहित्य से परिचित थे, दु:खी थे। ऐसे ही एक विद्वान प्रोफ़ेसर टर्नर ने, जिन्होंने पटना विश्वविद्यालय में कार्य किया था, प्रोफ़ेसर सुधाकर झा को एक पत्र (16 सितम्बर 1935) लिख कर अपना दु:ख जताया : 'यह अत्यन्त दु:ख का विषय है कि पटना विश्वविद्यालय ने अपने ही प्रांत की प्राचीन और समुज्वल भाषा, मैथिली को स्वीकृति नहीं दी है जिसके बोलने वालों की संख्या में एक करोड़ से अधिक बिहार प्रांत के वासी हैं और जिस भाषा की स्वीकृति अपने पड़ोस के विश्वविद्यालय में मिल चुकी है। यदि ऐसा विचार है, और मैं इसका समर्थन करता हूँ कि हिंदी बिहार प्रांत की सरकारी भाषा बने, तो भी पठन–पाठन के लिए मैथिली के समान महत्त्वपूर्ण एवं समृद्धिशाली भाषा की अवहेलना करने का मुझे कोई कारण नहीं दिखता है।'[44]

यह भी ध्यान देने योग्य है कि महाराज दरभंगा ने सवा लाख रुपया दान देकर पटना विश्वविद्यालय में एक मैथिली चेयर की स्थापना करवायी थी। इसी कोष के आर्थिक सहयोग से जब डॉ. सुधाकर झा लंदन से डॉक्टरेट की उपाधि लेकर 1924 में स्वदेश लौटे तो पटना विश्वविद्यालय में उन्हें मैथिली

---

[40] वही.

[41] वही : 41.

[42] मैथिल महासभा जिसका गठन 1910 में हुआ था, ने इस भावना को पनपने तथा प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है. यह संस्था सामाजिक बुराइयों को ख़त्म करने के लिए बनायी गयी थी जिसमें केवल पंजीबद्ध मैथिल ब्राह्मण और कर्ण कायस्थी कायस्थ ही प्रवेश कर सकते थे.

[43] इस सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के नामों से यह पता चलता है— बाबू उमाशंकर प्रसाद, रायबहादुर श्यामनंदन सहाय, बाबू राजेश्वर प्रसाद सिंह (नरहन), सर चंद्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह, रायबहादुर श्री नारायण महथा, श्री महेश्वर नारायण सिंह, पं. धर्मराज ओझा, पं. यमुना प्रसाद त्रिपाठी, पं. परमेश्वर त्रिपाठी, सर्वश्री केदारनाथ महथा, गौरीदत्त जालान, रामदेव ओझा, लक्ष्मीनारायण गुप्त, गया प्रसाद, रामचरण, बिंदेश्वरी प्रसाद शर्मा, जनकाधारी प्रसाद, शारदा प्रसाद, मदन प्रसाद, एल.ऐन. गोस्वामी, लक्ष्मी नारायण सिंह, तारकेश्वर प्रसाद, आरसी प्रसाद सिंह, रेवती रमण श्रीवास्तव, श्रीमती भवानी मेहरोत्रा, पं. रामनन्दन मिश्र, श्री सूर्यनारायण सिंह, श्री योगेशचंद्र मुखर्जी, आदि. देखें, शम्भुनाथ मिश्र (1991) : 85; चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर' (1969), *मैथिली साहित्य परिषदक संक्षिप्त इतिहास*, नवभारत प्रेस, लहेरियासराय : 11–12.

[44] जटाशंकर दास (1999) : 45.

के स्थान पर हिंदी व संस्कृत का अध्यापन करने के लिए निर्देश दिया गया। यह अलग बात है कि डॉ. सुधाकर झा अनौपचारिक रूप से मैथिली का अध्यापन करते थे जिसमें विभिन्न विषयों के छात्र एकत्रित होते थे।[45] अंततः 1938 ई. में दरभंगा महाराज डॉ. कामेश्वर सिंह के व्यक्तिगत प्रभाव से तथा बाबू भोला लाल दास के अथक प्रयासों के फलस्वरूप पटना विश्वविद्यालय में ऐच्छिक विषय के रूप में स्वीकार कर ली गयी तथा 1950 तक एम.ए. तक मैथिली की प्रवेशिका तक मैथिली स्वीकृति पाठ्यपुस्तक निर्धारण सहित हो गयी।[46]

मैथिली भाषियों ने एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का कभी विरोध नहीं किया परंतु जब हिंदी के कुछ प्रचारकों ने मैथिली को हिंदी की ही एक बोली के रूप में प्रचारित करना शुरू कर दिया तो इसका विरोध होने लगा। विशेषकर 1920 और 1930 के दशकों में यह विरोध सबसे तीव्र था। बाद के दशकों में भी दोनों भाषाओं के बीच का संबंध अंतर्विरोधों से भरा हुआ रहा है। 1941 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का तीसवाँ अधिवेशन अबोहर में हुआ और डॉ. अमरनाथ झा को उसका अध्यक्ष बनने के लिए आमंत्रित किया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में दृढ़तापूर्वक उन्होंने इस बात को रखा कि 'हिंदी ही राष्ट्रभाषा बनने में सक्षम है। देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोग इसे समझ सकते हैं, स्वीकार करते हैं और हिंदी ही हमारी राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित कर सकती है और संस्कृति को मज़बूत कर सकती है।' उन्होंने हिंदुस्तानी और हिंदी के विरोध में मज़बूती से हिंदी का समर्थन किया। पर साथ में वह यह भी मानते थे कि मातृभाषा का स्थान राष्ट्रभाषा नहीं ले सकती है। वे दृढ़तापूर्वक मैथिली को ही अपनी मातृभाषा मानते थे और मिथिला में प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मैथिली को बनाने के प्रबल समर्थक थे। परंतु उनके इस समर्थन का उस समय के बिहार के लगभग सभी राजनीतिक नेताओं ने विरोध किया। 1939 में प्राथमिक शिक्षा के माध्यम को लेकर एक समिति का गठन बिहार सरकार द्वारा किया गया। उसके एक सदस्य डॉ. अमरनाथ झा भी थे। समिति ने 7 मार्च 1939 के फ़ैसले को मार्च 1940 की एक मीटिंग में बदल दिया। यह वही फ़ैसला था जिसमें मातृभाषा को प्राथमिक शिक्षा बनाने का माध्यम बनाने के तहत मैथिल और बंगाली का समर्थन किया गया था। इस बैठक की तिथि इस ढंग से निश्चित की गयी थी कि डॉ. झा इसमें भाग न ले सकें।[47] फिर भी डॉ. झा ने एक विरोध का नोट लिख कर मैथिली को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने की वकालत की। बाद में स्वीकृति मिलने के कुछ दशक के बाद भी पाठ्यपुस्तक-निर्माण में प्रशासनिक उपेक्षा के कारण इसे अब भी लागू नहीं किया जा सका है। डॉ. अमरनाथ झा के अनुसार, 'राजेन्द्र प्रसाद के लिए मैथिली हिंदी का ही एक प्रकार है और वह हिंदी को बिहार की लिखित भाषा मानते थे। दूसरी तरफ़ डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा बिहारी भाषा की बात करते हैं और कहते हैं कि हिंदुस्तानी बिहार प्रांत के अधिकांश लोगों की भाषा होने के बजाय एक विदेशी भाषा है। उनके अनुसार बिहार में हिंदी का प्रयोग भाषा के रूप में इतना ही सहज है जितना अंग्रेज़ी का प्रयोग अंतःप्रांतीय भाषा के रूप में सम्पूर्ण भारत में।'[48]

इस तरह हम देखते हैं कि राजेन्द्र प्रसाद और डॉ. सिन्हा हिंदी के बिहार में एक भाषा के रूप में प्रयोग को लेकर जहाँ एक दूसरे का विरोध करते हैं, वहीं मैथिली को एक भाषा के रूप में स्थान देने के प्रश्न पर एक दूसरे से सहमत हो जाते हैं। क्यों? डॉ. हेतुकर झा के अनुसार डॉ. सिन्हा को यह डर था कि यदि मैथिली को मान्यता मिल जाती है तो भोजपुरी और मगही भाषी लोग भी भाषा के रूप में स्वतंत्र अस्तित्व की माँग करेंगे, जो उनकी नज़र में शायद बिहार की एकता के लिए सही

---

[45] वही : 46.

[46] वही : 47.

[47] हेतुकर झा (1997), *अमरनाथ झा*, साहित्य अकादेमी, दिल्ली, : 60.

[48] वही : 63.

नहीं होता। राजेन्द्र प्रसाद मैथिली का एक माध्यम के रूप में प्रयोग का जहाँ विरोध करते थे, वहाँ यह भी मानने के लिए तैयार हो गये कि 'निश्चय ही मैथिली का अपना कुछ साहित्य है और इसका अध्ययन और परिष्कार किया जाना चाहिए।'[49]

हिंदी के कट्टर समर्थकों ने किस तरह से मैथिली को हिंदी में समाहित करने का प्रयास किया है, इसे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक *हिंदी साहित्य* और *बिहार* (प्रथम खंड) के कुछ उद्धरणों से समझा जा सकता है : 'मैथिली में लिखित *वर्ण-रत्नाकर* को हिंदी में गद्य काव्य का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है।'[50] इसी प्रकार से मैथिली के सर्वमान्य कवि विद्यापति ठाकुर के बारे में लिखा गया है, 'आपकी गणना हिंदी के मूर्धन्य कवियों में है। मैथिली के तो आप सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। बंगाल, असम, उड़ीसा, नेपाल आदि स्थानों में आपके गीत गाये जाते हैं।'[51] कुछ मैथिली लेखकों का तर्क यह भी है कि मिथिला में अंगिका और बज्जिका का जो प्रश्न आज खड़ा किया गया है उसमें बिहार सरकार और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद का प्रमुख हाथ है। ज्ञातव्य है ग्रियर्सन सहित अनेकों विद्वान इन्हें मैथिली की ही बोली मानते थे।[52]

'पाटल' के जनवरी 1954 अंक में छपे एक आलेख 'मैथिली और हिंदी' में रामविलास शर्मा ने यह तर्क दिया था कि मैथिली कोई भाषा नहीं बल्कि एक बोली मात्र है जिसका कल्याण हिंदी में पूर्णतः समाहित होकर ही हो सकता है। बिहार की राजभाषा हिंदी है तथा साहित्य, अख़बार और फ़िल्मों के माध्यम से इसका प्रचार-प्रसार और बढ़ रहा है। बिहार में राजनीतिक आंदोलन मिथिला के अलगाव को हिंदी के माध्यम से बिहार के सार्वजनिक जीवन में खींच लेंगे। तथा मिथिला में सामंती अवशेष के ख़त्म होने पर तथा उद्योग-धंधों के विकास से मैथिली का बोली मात्र होना और भी स्पष्ट हो जाएगा। इसके विरोध में कवि नागार्जुन का, जो कि मैथिली में विद्यानिवास मिश्र 'यात्री' के नाम से लिखते थे, तर्क था कि यह महज़ एक कपोल कल्पना है। मैथिली कोई मामूली बोली नहीं बल्कि एक प्राणवंत भाषा है। इसने अपने विकास क्रम में अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने अंदर समाहित कर लिया है, जैसे मगही के लगभग नब्बे प्रतिशत, गोरखाली तथा संथाली के सैकड़ों शब्द। इसी प्रकार संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश से, अरबी, फ़ारसी, तुर्की तथा अंग्रेज़ी से भी लिए हुए कई शब्दों का मैथिली साहित्य में उपयोग हो रहा है। इससे ज़ाहिर है कि मैथिली का साहित्य अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह ही समृद्ध हो रहा है। दूसरे वह लिखते हैं कि हिंदी बुरी तरह से मैथिली को अपने अंदर समाहित करने पर तुली है तथा मैथिली बुद्धिजीवी बिना शासकीय प्रश्रय के पिछले साठ वर्षों से अपनी मातृभाषा को मान्यता दिलाने के लिए संघर्षरत है, जिनमें उन्हें सफलता मिली भी है। साम्राज्यवादियों या पूँजीवादियों की तरह ही हिंदी को अन्य इलाक़े की जनता पर उनकी सहमति के विरुद्ध लादना ही हिंदी के विरोध को प्रश्रय देगा। फिर उन्होंने क्रियापद, शब्द भंडार एवं अभिव्यक्ति की क्षमता का उदाहरण देकर मैथिली के स्वतंत्र अस्तित्व को दर्शाया है। फिर भी वे हिंदी के विरोध में नहीं थे परंतु वहां इसका विकास शासकीय चंगुल से बाहर जनसामान्य में स्वाभाविक रीति से हो, इसके पक्ष में थे।[53] रामविलास शर्मा के इस तर्क का भी खण्डन किया जा सकता है कि बिहार की

[49] वही : 62.

[50] यहाँ ज्योतिश्वर ठाकुर द्वारा रचित प्रथम मैथिली गद्य *वर्ण रत्नाकर* की चर्चा की जा रही है। शिवपूजन सहाय (संपादक) (1980), *हिंदी साहित्य और बिहार,* प्रथम खण्ड, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, चतुर्थ संस्करण : 37.

[51] वही : 39.

[52] लेखक द्वारा चंद्रनाथ मिश्र 'अमर', भीमनाथ झा, रामदेव झा का साक्षात्कार जून-जुलाई, 2011, दरभंगा.

[53] नागार्जुन (1954), 'मैथिली और हिंदी' *आर्यावर्त,* 14 एवं 21 फरवरी, संकलित, शोभाकांत (सम्पा.), *नागार्जुन रचनावली,* खण्ड-6, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 167-177.

राजभाषा हिंदी है एवं इसके विस्तार से अन्य 'बोलियों' का महत्त्व और कम होगा। वर्तमान परिदृश्य में हम देखते हैं कि बिहार के अंदर न केवल मैथिली, बल्कि भोजपुरी, मगही, अंगिका एवं बज्जिका भी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की माँग को लेकर आवाज़ उठाती रही हैं। इसमें मैथिली के अलावा वर्तमान में ऑडियो, वीडियो संस्कृति एवं सिनेमा के माध्यम से भोजपुरी के उत्थान ने और साथ ही अन्य राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों, जैसे नये मध्यम वर्ग का उदय, आदि ने बिहार की भाषाई एकता पर ही कई प्रश्न चिह्न लगा दिये हैं।[54] यह अंतर्विरोध भोजपुरी में भी विशेषकर हम देखते हैं। हिंदी के प्रबल समर्थक हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रारम्भ में हिंदी का समर्थन किया और इसे भोजपुरी के विकास में बाधक नहीं माना परंतु कुछ दशक बाद ही उन्होंने दुःख ज़ाहिर किया कि वे अपनी मातृभाषा में कुछ लिख नहीं पाये। उन्होने अन्य भाषाओं की तरह अवधी एवं भोजपुरी को भी समुचित सम्मान देने की माँग की।[55] अतः क्या हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीयता की भावना में आकर कई भाषाई समुदाय हिंदी का पक्ष ले रहे थे, परंतु अपनी भाषाई पहचान व अस्मिता को लेकर सतर्क थे? प्रायः मैथिली भाषियों में यह सतर्कता प्रखर थी एवं इसका प्रदर्शन काफ़ी पहले से हो रहा था। परंतु अन्य भाषाई समुदायों में भी यह तत्त्व गौण पर कमोबेश मौजूद थे, और अब भी हैं।

प्रस्तुत आलेख भाषाई राजनीति के आधार पर हिंदी वर्चस्व का राष्ट्रीय राज्य के संदर्भ में उदय तथा प्रसार एवं इसके विरोध को मैथिली के संदर्भ में समझने का एक प्रयास है। इसमें हम देखते हैं कि किस ढंग से दोनों भाषाओं का आपसी संबंध अंतर्विरोधों से भरा हुआ है। मैथिली का जो संबंध हिंदी से रहा है क्या उसके आईने में हिंदी से अवधी, खड़ी बोली, ब्रज, भोजपुरी के संबंधों को देखा जा सकता है? क्या मैथिली की तरह ही यह अन्य भाषाएँ अपनी स्वतंत्रता स्थापित कर सकती हैं? यदि इस तरह का प्रयास होता है, तो हिंदी क्षेत्र की भाषाई राजनीति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? हिंदी क्षेत्र के भीतर की अन्य भाषाओं व बोलियों के विकास को 'हिंदी के विकास' के लिए ख़तरा मानना कहाँ तक सही है? ये सभी सवाल महत्त्वपूर्ण हैं और इन सवालों के माध्यम से हम हिंदी क्षेत्र की भाषाई राजनीति को और इस भाषाई राजनीति के माध्यम से इस क्षेत्र के भाषाई समुदायों के विकास को, विशेषकर आधुनिकता के संदर्भ में, और अधिक गहराई से समझ सकते हैं।

संदर्भ

अदील खान (2005), *पॉलिटिक्स ऑफ़ आइडेंटिटी : एथ्निक नेशनलिज़्म इन पाकिस्तान,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

अमृत राय (1991), *अ हाउस डिवाइडिड : दि ऑरिज़िन ऐंड डिवेलपमेंट ऑफ़ हिंद/हिंदवी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

आलोक राय (2001), *हिंदी नेशनलिज़्म,* ओरियंट लांगमैन, नयी दिल्ली.

उदयन मिश्रा (1984), 'असम साहित्य सभा : रिट्रीट फ़्रॉम पॉपुलिस्ट पॉलिटिक्स', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 11, अंक 15.

[54] रत्नाकर त्रिपाठी और जितेन्द्र वर्मा (2011), *आइडेंटिटीज़ इन फ़र्मेंट : रिफ़्लेक्शंस ऑन प्रेडिकामेंट ऑफ़ भोजपुरी सिनेमा, म्यूज़िक ऐंड लैंग्वेज इन बिहार, सामर्थ बटव्याल एट ऑल इंडियन मास मीडिया ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ चेंज़,* रूटलेज, लंदन : 93–121.

[55] हजारी प्रसाद द्विवेदी (1976), 'भोजपुरी साहित्य परम्परा', द्वितीय अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में पठित अध्यक्षीय भाषण, पटना, मई 15, संकलित (1981), *हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली,* खण्ड 10, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 446–452.

उदय नारायण सिंह, प्रदीप कुमार बोस, ऐन. राजाराम (1985), *द मैथिली लैंग्वेज मूवमेंट इन नॉर्थ बिहार : अ सोशियो लिंग्विस्टिक इंवेस्टीगेशन,* साउथ गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत (अप्रकाशित).

उपेंद्र ठाकुर (1998), *हिस्ट्री ऑफ़ मिथिला,* मिथिला रिसर्च इंस्टीट्यूट, दरभंगा.

एम. कार (1975), 'असम्स लैंग्वेज क्वेश्चन इन रिट्रोस्पेक्ट', *सोशल साइंटिस्ट,* खण्ड 4, अंक 2.

एस.डब्ल्यू. फ़ैलॅन (1879), *अ न्यू हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी,* द मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस.

क्रिस्टोफ़र किंग (1994), *वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट्स : द हिंदी मूवमेंट इन नाइनटिंथ सेंचुरी नार्थ इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

गिरींद्र मोहन मिश्र, *किछु देखल किछु सुनल,* श्री मदन मोहन मिश्र, नवभारत प्रेस, लहेरियासराय, साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित रचना.

चंद्रनाथ मिश्र 'अमर' (1969), *मैथिली साहित्य परिषदक संक्षिप्त इतिहास,* नवभारत प्रेस, लहेरियासराय.

जटाशंकर दास (1999), *बाबू भोला लाल दास,* साहित्य अकादेमी, दिल्ली.

जयदेव मिश्रा (1981), *चंदा झा,* साहित्य अकादेमी; नयी दिल्ली.

नागार्जुन (1954), 'मैथिली और हिंदी' *आर्यावर्त,* 14 एवं 21 फ़रवरी, संकलित, शोभाकांत (सम्पा.), *नागार्जुन रचनावली,* खण्ड-6, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

निवेदिता मेनन और आदित्य निगम (2007), *पावर ऐंड कंटेस्टेशन : इंडिया सिंस 1989,* ज़ेड बुक्स, लंदन.

पार्थ चटर्जी (1993), *नेशंस ऐंड इट्स फ्रैग्मेंट्स : कोलोनियल ऐंड पोस्ट-कोलोनियल हिस्ट्रीज़,* प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन

पार्थ चटर्जी (1997), *आवर मॉडर्निटी,* साउथ-साउथ प्रोग्राम फॉर रिसर्च ऑन द हिस्ट्री ऑफ़ डिवेलपमेंट (सेफिस) ऐंड द कौंसिल ऑफ़ द डेवेलपमेंट ऑफ़ सोशल साइंस रिसर्च इन अफ्रीका (कोडेसरिया), रोट्रेडम/डकार.

पॉल आर. ब्रास (1975), 'दि मैथिली लैंग्वेज मूवमेंट्स इन नार्थ बिहार', पॉल आर. ब्रास, *लैंग्वेज रिलीज़न ऐंड पॉलिटिक्स इन नार्थ इंडिया,* कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज.

पैम्फ़लेट, 28 वाँ मैथिली कार्यकर्ता दिवस, पद्मा, मधुबनी, 28 अप्रैल से 1 मई 2012.

फ्रेंचेस्का ओरसीनी (2002), *द हिंदी पब्लिक स्फ़ियर* (1920-1940) : *लैंग्वज ऐंड लिटरेचर इन दि ऐज़ ऑफ़ नेशनलिज़म,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

बर्नार्ड एस. कोन, (1996), 'लैंग्वेज ऑफ़ कमांड ऐंड कमांड ऑफ़ लैंग्वेज', *कोलोनियलिज़म ऐंड इट्स फ़ॉर्म्स ऑफ़ नॉलेज़,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन; क्रिस्टोफ़र किंग (1994), *वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, बंबई.

बेनेडिक्ट ऐण्डरसन (1986). *इमैजिन्ड कम्युनिटीज़ : रिफ़्लेक्शंस ऑन दि ओरिजिन ऐंड स्प्रेड ऑफ़ नेशनलिज़म,* वर्सो, लंदन.

मिथिला समाचार, वर्ष 33, अंक 1 से 24, पृष्ठ 7, यह लेख 15 अगस्त 1947 को *आर्यावर्त* में भी छपा था।

मिथिला मोद, उद्गार 56: 11-12 शम्भुनाथ मिश्र; 1991 में उद्धृत पृष्ठ 6.

रत्नाकर त्रिपाठी और जितेंद्र वर्मा (2011), *आइडेंटिटीज़ इन फ़र्मेंट : रिफ़्लेक्शंस ऑन प्रेडिकामेंट ऑफ़ भोजपुरी सिनेमा, म्यूज़िक ऐंड लैंग्वेज इन बिहार,* सामर्थ बटव्याल एट ऑल इंडियन मास मीडिया ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ चेंज़, रूटलेज़, लंदन : 93-121.

रिचार्ड बुरघार्ट, 'ए क्वैरेल इन द लैंग्वेज फैमिली; एजेंसी ऐंड रिप्रज़ेंटेशन ऑफ़ स्पीच इन मिथिला' *मॉडर्न एशियन स्टडीज़,* खण्ड 27, अंक 4.

वसुधा डालमिया (1997), *नैशनलाइज़ेशन ऑफ़ हिंदी ट्रैडिशंस : भारतेंदु हरिश्चन्द्र ऐंड नाइनटिंथ सेंचुरी बनारस,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

शम्भुनाथ मिश्र (1991), *मैथिलीक दधीचि बाबू भोला लाल दास,* कर्नमित्र, कोलकाता : 3.

शिवपूजन सहाय (संपादक) (1980), *हिंदी साहित्य और बिहार,* प्रथम खण्ड, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, चतुर्थ संस्करण.

सजल बसु (1992), *रीजनल मूवमेंट्स : पॉलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज, एथ्निसिटी-आइडेंटिटी,* मनोहर पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

सेटन वॉट्सन (1977), *नेशंस ऐंड स्टेट्स,* मेथुन ऐंड को. लिमिटेड, लंदन.

सुदीप्त कविराज (1992), 'इमैज़िनरी इंस्टिट्यूशंस इन इंडिया', पार्थ चटर्जी और ज्ञानेंद्र पाण्डे (सम्पा.), *सबॉल्टर्न स्टडीज़,* खण्ड 7, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

—— (1996), 'क्रिटिक ऑफ़ पैसिव रेवोल्यूशन' *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 23, अंक 45-47.

हजारी प्रसाद द्विवेदी (1976), 'भोजपुरी साहित्य परम्परा', द्वितीय अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में पठित अध्यक्षीय भाषण, पटना, मई 15, संकलित (1981), *हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली,* खण्ड 10, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 446-452.

हेतुकर झा (1997), *अमरनाथ झा,* साहित्य अकादेमी, दिल्ली.